P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कबीर और अम्बेडकर में वैचारिक समरसता

ममता सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश,
भारत

सारांश

भारत वर्ष विश्व पटल पर अपनी वैचारिकी के लिये सर्वत्र अपने वैशिष्ट्य के लिये विख्यात है और इसी वैशिष्ट्य की श्रृंखला को वैदिक–वांगमय के साथ–साथ महान धर्म–प्रणेताओं, समाज–सुधारकों, सन्तों और महात्माओं के विचारों ने समय–समय पर समाज का पथ–प्रदर्शन किया है, जिनमें अनेकानेक सन्त, पैगम्बर आदि समाज–कल्याणार्थ अपने–अपने विचारों के लिये प्रसिद्ध हैं। सन्त कबीर भी ऐसे ही समाज–वेत्ता एवं दार्शनिक हैं। कबीरदास जी रामानन्द के शिष्यों में सर्वप्रधान थे, इनकी जाति, जन्म, कुल के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही उनको स्वयं से जोड़कर आत्मसात करते रहे हैं कि इसमें हिन्दू–मुस्लिम एकता को अपने विचारों में केन्द्र में रखा गया है और विचार कबीरवादी चिन्तन में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। कबीरवाणी का प्रभाव तात्कालिक समाज पर हिन्दू–मुस्लिम के परस्पर व्यवहार पर सौहार्द को दर्शाता है, जबकि तत्कालिक सामाजिक–व्यवस्था में अनेकानेक रूढ़ियाँ, जाति–पांति, धार्मिक–वैमनस्य भी विद्यमान था किन्तु कबीर की ओजमय वाणी और उनका समाज एवं धर्म को एकभाव में देखने का दृष्टिकोण इस सामाजिक एवं धार्मिक–वैमनस्य में एक सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करता है। उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों को एक–दूसरे के समीप ला दिया।

मुख्य शब्द : समरसता, संत, परम्परा, सूफी, सामंजस्य, नाथ–पंथी, बसुधैव, कुटुम्बकम।

प्रस्तावना

संत कबीर का पारिवारिक परिवेश 'जुलाहा' कुल में हुआ और इस जाति को हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म में स्थान मिला हुआ था। काशी में ही उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश जीवन व्यतीत किया, और हिन्दू–मुस्लिम धर्मों के बाह्य भेदों, रूढ़ियों और आडम्बरों की उपेक्षा कर इन धर्मों की आंतरिक एकता को अपनी वाणी का केन्द्र बिन्दु बनाया, जोकि कबीर को एक प्रखर समाज–दार्शनिक के पटल पर केन्द्रित करने का कार्य करता है।

कबीर रामानन्द के शिष्य थे, जो राम की भक्ति पर बल देते थे। पर इस युग की बहुसंख्यक भारतीय जनता नाथपन्थियों के प्रभाव के कारण भक्ति मार्ग से विमुख थी, और ऐसी अंतःसाधना को महत्व देती थी, जिसमें प्रेमतत्व का अभाव था। ये नाथपंथी लोग भगवान को निर्गुण रूप में देखते थे और निर्गुण व निराकार ब्रह्म के लिए भक्ति का विषय बन सकना सम्भव नहीं था। रामानन्द के शिष्य होते हुए भी संत कबीर पर नाथपंथी सम्प्रदाय का प्रभाव था। इसीलिए उन्होंने राम या कृष्ण के रूप में भगवान् की उपासना न करके निर्गुण व निराकार रूप में ही उसकी पूजा की। पर यह करते हुए उन्होंने प्रेम मार्ग को अपनाया, और वैष्णव भक्तों के समान निर्गुण भगवान् से प्रेम करने और उसकी भक्ति का उपदेश दिया। इस प्रकार कबीर द्वारा प्रतिपादित मत में नाथपंथी योगियों और रामानन्द के भक्ति–मार्ग का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है। अपने गुरु रामानंद के समान कबीर भी राम के उपासक थे, पर उनके राम धनुर्धारी सीतापति राम न होकर ब्रह्म के पर्याय मात्र थे। जिस प्रकार कबीर ने नाथपंथी सम्प्रदाय के निर्णुण ब्रह्म की प्रेम द्वारा उपासना करने का उपदेश दिया, वैसे ही इस युग के अन्य संतों का अनुसरण कर उन्होंने ऊँच–नीच और हिन्दू–मुस्लिम के भेद–भाव को भी दूर करने का प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि में अल्लाह और राम में या करीम और केशव में कोई भेद नहीं है।

इस्लाम ने जिस सूफी सम्प्रदाय के प्रेम मार्ग की चर्चा की है, वही कबीर की निर्गुण भक्ति के मार्ग में देखा जा सकता है। मुसलमानों का अल्लाह, वैष्णवों के विष्णु के समान राम व कृष्ण के रूप में मानव–शरीर को धारण नहीं करता। उसका स्वरूप नाथ–पंथियों के निर्गुण ब्रह्म से बहुत भिन्न नहीं है। यदि

सूफी इस निर्गुण अल्लाह के प्रति प्रेम कर सकते थे, तो हिन्दू अपने निर्गुण निराकार भगवान् के प्रति प्रेम या भक्ति क्यों नहीं कर सकते? कबीर के उपदेशों से हिन्दू और मुसलमानों में निकटता स्थापित हुई और इसीलिए उनकी शिष्य मण्डली में अब तक भी हिन्दू और मुसलमान दोनों विद्यमान है, और इसीलिए उनकी मृत्यु पश्चात् दोनों अनुयायियों ने उनके नाम पर दावा किया था।

भारत के इतिहास का मध्यकाल सामाजिक संक्रांति के लिये जाना जाता है। तात्कालीन सामाजिकता असंगठित थी। धर्म दर्शन और संस्कृत की अनेक धाराएँ परस्पर संघर्षरत थीं। हिन्दू–समाज भेदभाव पर आधारित शास्त्रों द्वारा अनुमोदित वर्ण व्यवस्था से संचालित होता था परन्तु विद्रोह के स्वर भी उठते थे। बौद्धों, जैनों, नाथों और सिद्धों इत्यादि की विद्रोह में महती भूमिका होती थी। हिन्दू समाज के समानान्तर मुस्लिम समाज का धर्म इस्लाम जो कि सैद्धान्तिक आधार पर समानता का पोषक होते हुए विषमता की भावना से ग्रस्त हो रहा था। बाह्याचारों ने एक सीमा तक इसे अपने मूल से भटका दिया था। यद्यपि इनके बीच भी सूफी संत विद्रोही स्वर के साथ आ खड़े हुए थे परन्तु आम जनता कर्मकाण्डों द्वारा संचालित धर्म के दुष्चक्र में उलझी हुई थी। ऐसे समय में कबीर ने जटिल परिस्थितियों के मध्य अपनी स्वतंत्र दृष्टि, मानवतावादी चिन्तन पद्धति और दृढ़ संकल्पना शक्ति के द्वारा समाज में व्याप्त विषमता का न केवल विरोध ही किया अपितु अपनी वाणियों के माध्यम से समतामूलक समाज के लिए आधारभूमि भी प्रस्तुत की। सामाजिक विश्रृंखला का केन्द्र व्यक्ति के लिए उच्च आदर्श उपस्थित करते हुए कबीर कहते हैं कि व्यक्ति को गुण ग्राही और आत्मज्ञानी होना चाहिए। ये बात करते हुए कबीर कहते हैं कि– मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे हैं मेरा।। कबीर ने गुरु शिष्य दोनों के लिए श्रेष्ठता स्वनियंत्रण समदिर्शता एवं आत्म नियंत्रण को आवश्यक मानते हुए समाज के सर्व कल्याण के लिए सहायक माना है। यद्यपि साम्प्रदायिकता का जो भयावह स्वरूप समसामयिक संदर्भों में दृष्टिगत होता है वही आधुनिक युग का रूप में भी विद्यमान है।

मध्यकाल में साम्प्रदायिक वैमनस्व के कारण साम्प्रदायिक श्रेष्ठता के वर्चस्व की मानसिकता पर आधारित थी। वह कभी तो दो धर्मों के मध्य की वर्चस्वता के कारण दृष्टिगत होती थी तो कभी एक ही धर्म के विविध सम्प्रदायों के मध्य दिखाई देती थी। कबीर समाज में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने के क्रम में उभय पक्ष धर्मों की आलोचना में मुखर जौर खुदाय मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा। तीरथ मूरति राम निवासा, दुहु मैं किनहू न हेरा।। साम्प्रदायिक साम्य की भावना से संचालित कबीर साहित्य में अनेक दोहे और पद देखे जा सकते हैं। जो समाज में एकता एवं भाईचारे के लिए मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध होते प्रतीत होते हैं। इसी भावना के समानांतर वर्ण–व्यवस्था के परिणाम स्वरूप समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का विरोध कबीर द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी समाज के संदर्भों की अनिवार्य विशेषता है। समाज के विकास की प्रमुख बाधाओं में आर्थिक वैमनस्य के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। कबीर आर्थिक विषमता के मूल में धन संचय एवं वैभवपूर्ण जीवन पर कुठाराघात करते हुए कहते हैं– कबीर सो धन संचिये, जो आगे कूं होइ। सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देख्या कोई।। वास्तविक धन का संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि – निरधन–सरनधन दोनों भाई प्रभु की कला न मेरी जाई। कहि कबीर निरधन है सांइ जाके हिदये नाम न होई।। कबीर की मान्यता है कि धन संचय अध्यात्म और समाज दोनों के विरुद्ध है। यही कारण है कि वह आर्थिक वैमनस्य के स्थान पर साम्य स्थापित करने हेतु समाज के सामने आते हैं।

कबीर अपनी वाणियों के माध्यम से सामाजिक ढांचे को विश्रृंखला से दूर करने के लिए मानवता की भावना की आवश्यकता पर विशेष बल देते हैं। मानवोचित गुणों का उल्लेख करते समय दया, क्षमा, उदारता और दानशीलता आदि को रेखांकित किया जाता है। कदाचित् मनुष्यों के यही वह सद्व्यवहार है जो समाज को सुसंगठित रखने में अहम भूमिका निभा सकते हैं। सद्व्यवहार से सम्बंधित कबीर काव्य में अनेक पद एवं दोहे प्राप्य हैं–

एते औरत मरदा साजे, ये सब रूप हमारे।
कबीर पंगुरा राम अलह का, सब गुरु परी हमारे।।

प्रस्तुत दोहे में कबीर सभी में यहाँ तक कि असह्य तक में अपनी आत्मा को पहचानते हुए उनका सम्मान एवं सेवा करने की घोषणा करते हैं। प्राचीन काल से ही संसार के अधिकांश समाज में व्यवस्था के लिए जिस विशिष्ट नियमों और उपनियमों का पालन किया जाता है ऐसे सार्वजनिक नियम को धर्म की संज्ञा से ही अभिलिखित किया जाता है। व्यवस्था, न्याय, सत्य, अहिंसा और प्रेम इत्यादि उदात्त भावों पर आधारित होती है। यही समाज को संगति प्रदान करती है। परन्तु जब अव्यवस्था या यूँ कहा जाये कि धर्म के स्थान अधर्म का जब समाज में प्रभाव बढ़ जाता है जब समाज में विसंगतियों का जन्म स्वाभाविक है। कबीर कालीन समाज की विसंगतियों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं। कबीर अधर्म जन्य विश्रृंखल समाज का विरोध ही नहीं करते वरन् सहज एवं सत्य धर्म के स्वरूप को निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि उसका आधार चरित्र, संयम एवं हृदय तथा मन की स्वच्छता होना चाहिए–

जे मन नहि तजे विकारा, तो क्यूँ तिरिये भो पारा।
जब मन छाड़े कुटिलाई तब आइ मिले राम राई।।

कबीर ने धर्म के अन्तर्गत सात्विकता, नैतिकता इत्यादि को भी महत्व देते हुए समाज के लिए ऐसे सहज धर्म का निर्देशन किया है जो साधक को स्तुति, निन्दा, आशा एवं मान अभिमान से मुक्त कर देता है–

असतुति निन्दा आसा छोड़ तजे मान अभिमाना।
लोहा कंचन समि करे देखे ते मूरति भगवाना।।

भौतिक जगत में मानव समाज के अतिरिक्त जीव जन्तुओं का भी एक विशाल संसार है। मनुष्यों का साथ इनका घनिष्ठ संबन्ध भी है। इतना ही नहीं वनस्पति जगत भी परिवर्तन–परिवर्धन एवं संवेदनशील होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा सर्वव्यापी है। यह संसार के सभी पदार्थों में व्याप्त है। अतः मानव जीव–जन्तु एवं वनस्पतियाँ आध्यात्मिक एकता से परिपूर्ण मानी गई है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों धरातल पर इन सबको मिलाकर एक विशाल समाज की सृष्टि हुई है। समाज के इस विशाल स्वरूप के प्रत्येक अंश के प्रति कबीर काव्य में संवेदनशीलता व्याप्त है–

भूली मालनि पाती तोड़े, पाती पाली जीव।
जा मूरति को पाती तोड़े, सो मूरति निरजीव।।

जीव–जन्तुओं के प्रति उनकी जागरुकता विलक्षण है–

जीव वधत अरू धरम कहते हो, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तो मुनि जन है बैठे, कासनि कहौ कसाई।।

अतः हम कह सकते हैं कि कबीर ने सुशिष्ट और संयत समाज के लिए समाज की अधिकांश इकाईयों से सम्बन्धित स्पष्ट विचारधारा प्रस्तुत की है। समाज की आधारभूमि इकाई व्यक्ति के लिए उन्होंने गुण ग्रहण की क्षमता से युक्त संयम और सदाचार के आदर्श को आवश्यक माना है। यद्यपि नारी–कल्याण के विषय पर यथोचित विचार प्रस्तुत नहीं किये उसे कबीर की सीमा के रूप में उल्लेखित किया जाता है, परन्तु सामाजिक व्यवस्था में उनके लिए कुछ आवश्यक गुणों के रूप में चरित्र, पतिव्रत एवं सतीत्व का उल्लेख अवश्य किया है। कबीर साहित्य में आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों संदर्भों में गुरु को विशेष महत्ता प्राप्त है। धार्मिक विभेद वर्ण व्यवस्था एवं साम्प्रदायिक वैमनस्य का विरोध करके धार्मिक एवं साम्प्रदायिक एकता को उन्होंने सामाजिक साम्य के मूल रूप में रेखांकित किया है। वर्ण–भेद को कबीर वाणी में समाज की विखण्डनकारी शक्ति के रूप में दर्शाया गया है और उसे समाप्त करने का आह्वान स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है।

कबीर के अनुसार आर्थिक वैमनस्य समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करता है। अतः स्वस्थ समाज के लिए वैमनस्य समाप्ति आवश्यक है। मानव के साथ उसके परिवेश को जोड़कर जिस विशाल समाज का सृजन होता है उसके अन्तर्सबन्धों के संदर्भ में कबीर का दृष्टिकोण स्पष्ट एवं संरचनात्मक है। अतः कहा जा सकता है कि कबीर ने आध्यात्मिक क्षेत्र में जिस विचार पद्धति को स्थापित कर उसकी अनुभूति प्राप्त की उसी अनुभूति के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समाज में समरसता स्थापित करने हेतु समाज–कल्याण की भावना से जो समाज के प्रति अपने विचार प्रस्तुत किये उनसे डा. अम्बेडकर ने प्रेरणा एवं शिक्षा–दिशा का निर्धारण किया चूँकि डॉ. अम्बेडकर ने बाल्यकाल से ही कबीर की वाणी को सुना था, इसलिए कबीर दर्शन की वैचारिकी उनके मनस पटल पर विलक्षण प्रतीत भी होती है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारत ही नहीं बल्कि विश्व की उन महान विभूतियों में से एक है जिन्होंने समाज में व्याप्त असंख्य कुरीतियों और अमानवीय कुप्रथाओं के विरुद्ध संघर्ष करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। भारत की सामाजिक स्थिति दुरूह हो गई थी और दुरूहता तत्कालीन समाज में धर्म के नाम जो मकड़जाल फैला था, जो पूरी तरह अंधविश्वास पर आधारित था। ठीक उसी तरह जैसे कबीर के काल में व्याप्त था, तो कहा जा सकता है कि डॉ. अम्बेडकर ने भी तत्कालीन समाज व्यवस्था में इसी अंधविश्वास को बुद्ध की अविद्या और अविद्या को अज्ञान सदृश देखा और इस समस्या के समाधान हेतु उन्होंने कबीर के समाज दर्शन या संत परम्परा के उद्‌भव को देखा और संत–परम्परा के मूल में उनको इसकी पृष्ठभूमि श्रमण परम्परा (बोद्ध–दर्शन) में दृष्टिगोचर हुई।

बाबा साहेब अम्बेडकर का चिन्तन रचनात्मक था। वे चाहते थे मानव को मानव से अलग करने वाली ताकतों का बहिष्कार किया जाये ताकि मानव गरिमा सुस्थापित हो और स्वस्थ समाज की संस्थापना हो सके धर्म से उनका घनिष्ठ सरोकार था इसलिये इस दिशा में उन्होंने पर्याप्त चिन्तन, मनन और लेखन किया था। उनका मानना था कि व्यक्ति को केवल अपने ही हित लाभ के लिये कार्य नहीं करना चाहिये अपितु अपने देश, समाज एवं विश्व कल्याण के लिये भी कार्य करना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर ने धर्म की महत्ता एवं उपयोगिता को कभी अस्वीकार नहीं किया। आपने गहन अध्ययन करके यह सुनिश्चित किया कि कौन सा धर्म उनकी मानववादी विचार धारा के निकट है। अन्य धर्मों की तुलना में उन्होंने बौद्ध धर्म को अंगीकार किया जो उनके जीवन तथा दर्शन की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त था। उन्होंने हिन्दू धर्म को त्याग बौद्ध धर्म अपनाया। उनकी यह मान्यता था कि धर्म व्यक्ति एवं समाज की समृद्धि के लिये अनिवार्य है। साथ ही विश्व शान्ति के लिए भी बौद्ध धर्म सर्वश्रेष्ठ है।

अम्बेडकर का मानना है कि बुद्ध का चिन्तन प्राचीन होते हुये भी अत्यधिक नवीन है। बुद्ध कही सुनी बातों पर विश्वास करने की जगह तर्क, व परीक्षण पर जोर देते हैं। उनके सिद्धान्त विज्ञान सम्मत है। वे व्यक्ति की वैयक्तिकता को स्वीकार करते हैं और उसे महत्व देते हैं। वे व्यक्ति से कड़े स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि आप अपना प्रकाश स्वयं बनो अत्तदीपो भवः। अपनी मुक्ति के लिऐ आपको किसी दूसरे की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं है। अपितु इसके लिये आपको अपने आप उद्यम करना है। बुद्ध का चिन्तन विज्ञान सम्मत ही नहीं अपितु नैतिक व मानवीय है। वे मानव सहित समस्त जीवों के कल्याण की बात करते हैं। अम्बेडकर ने बुद्ध के चिन्तन में कई ऐसी बातों का उल्लेख किया है जिनका अन्यत्र अभाव है इनमें से कुछ निम्न हैं :–

1. अन्ध विश्वास एवं अलौकिकवाद के स्थान पर प्रज्ञा की स्थापना।
2. सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं बौद्धिक स्वतंत्रता पर महत्व।
3. सामाजिक एवं आर्थिक समानता की शिक्षा।
4. अहिंसा, करुणा, प्रेम एवं भाईचारे की भावना के विकास पर बल।
5. लौकिक जीवन की वास्तविकता की स्वीकारोक्ति, लौकिक दुखों पर एहसास और उनकी मुक्ति के लिये इसी जीवन में प्रयास किये जाने पर बल।

अम्बेडकर धर्म को मानवता के लिये जरूरी मानते हैं। उनका मानना है कि धर्म यदि समाप्त होता है तो समाज भी समाप्त हो जायेगा। कोई भी सरकार मानव को वह सुरक्षा नहीं दे सकती जो उसे धर्म से मिलती है।

उनका कहना था आदिम युग में मानव को धर्म की जितनी आवश्यकता था उससे कहीं अधिक आज के तकनीकी युग में धर्म आवश्यक है। अम्बेडकर ने व्यक्ति और समाज के लिये धर्म को आवश्यक निरूपित किया। धर्म निरुपित जीवन का लक्ष्य नहीं है अपितु मानव जीवन का लक्ष्य है। धर्म अपनाते समय यह ध्यान रखा जाये कि जो धर्म अपनाया जा रहा है वह समाजद्रोही न हो, पाखण्डी, विडम्बना, सजा, रोग या पागलपन न हो बल्कि वह मानवता, संगठन, सामर्थ्य, समता, स्वतंत्रता और संसार को इसी जीवन में सुखी बनाने वाला होना चाहिये।

धर्म से अम्बेडकर का आशय दैवीय शासन या नियमन की आदर्श प्रयोजना के प्रतिपादन से है। जिसका लक्ष्य उस सामाजिक व्यवस्था जिसमें लोग रहते हैं को एक नैतिक व्यवस्था बनाना है। अम्बेडकर के अनुसार धर्म की विवेचना में दो बातें महत्वपूर्ण होती हैं। एक तो धर्म की आदर्श प्रयोजना का अध्ययन और दूसरे धर्म की आदर्श प्रयोजना के मूल्यांकन की कसौदी की विवेचना।

अम्बेडकर के अनुसार हम कह सकते हैं कि धर्म का कुछ न कुछ प्रयोजन होता है और प्रत्येक धर्म में लोगों के विश्वास एवं व्यवहार को नियमित एवं नियंत्रित करने की कोई न कोई आदर्श योजना होती है जिसे सामान्यतया दैवीय आदर्श प्रयोजन धर्म के बुनियादी सिद्धान्तों, नियमों तथा सामाजिक, नैतिक आचार प्रणालियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक धर्म में इस आदर्श योजना के मूल्यांकन की कुछ न कुछ कसौटियाँ होती हैं। अम्बेडकर का कहना है कि प्राचीन समाज व आधुनिक समाज में धर्म की आदर्श योजना के रूप में दैवीय शासन की जो व्यवस्थायें अपनाई गई उनमें भिन्नता है। प्राचीन समाज में धार्मिक आदर्श का लक्ष्य समाज था जबकि आधुनिक समाज में धार्मिक आदर्श का लक्ष्य व्यक्ति है। प्राचीन समाज में सही और गलत के निर्णय की पहचान उपयोगिता के आधार पर ही जाती थी जबकि आधुनिक समाज में सही और गलत का निर्णय न्याय के आधार पर किया जाता है। उपयोगिता प्राचीन समय में सही और गलत का निर्णय का आधार इसलिये थी, क्योंकि प्राचीन जगत का लक्ष्य समाज था और नैतिक दृष्टि से अच्छा वही था जिसकी सामाजिक उपयोगिता हो। आधुनिक जगत में न्याय सही और गलत का निर्णायक आधार इसलिये है, क्योंकि आधुनिक जगत का लक्ष्य व्यक्ति है और नैतिक दृष्टि से वही चीज अच्छी हो सकती है जो व्यक्ति के साथ न्याय करे।

धर्म के सम्बन्ध में अम्बेडकर की कुछ बुनियादी मान्यतायें थीं। उनका मानना था कि धर्म अपने अनुयायियों को स्वतंत्रता व समानता प्रदान करता है तथा उनमें भाईचारे की भावना विकसित करता है। धर्म समाज में व्यक्ति की गरिमा को स्थापित करता है। उसकी महत्ता को स्वीकारता है। उनका कहना था कि धर्म मनुष्य के लिये होना चाहिए न कि मनुष्य धर्म के लिए। धर्म को चाहिए कि वह सभी को शिखा व आत्मविश्वास का अवसर प्रदान करे। जो धर्म अज्ञान, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड व पाखण्ड को बढ़ावा देता है, जो अज्ञानी को अज्ञानी और निर्धन को और निर्धन बनाये रखता है, वह धर्म नहीं है, जो मनुष्य को मनुष्य के साथ पशवुत व्यवहार करने की अनुमति देता है वह धर्म नहीं है। अम्बेडकर की दृष्टि में केवल वही धर्म वास्तविक धर्म कहा जा सकता है ''जो तर्क संगत हो, जो नैतिकता पर आधारित हो और जो सभी काम में सभी मानव जाति की सेवा कर सकता हो। उन्होंने वास्तविक धर्म की कुछ कसौटियाँ निर्धारित की धर्म तर्क संगत एवं विज्ञान संगत हो। धर्म नैतिकता पर आधारित हो। धर्म सामाजिक न्याय के मौलिक तत्वों, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व भाव को मान्यता प्रदान करता हो। धर्म सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो। सामाजिक हितों का संवर्द्धन करें न कि उसे क्षति पहुँचायें। धर्म निर्धनता का अनुमोदन नहीं करता हो।''

यह सर्वविदित है कि बौद्ध धर्म का विस्तार विश्व के अनेक देशों में है एवं उसके अनुयायी भी वहाँ बहुसंख्यक हैं। डॉ. अम्बेडकर की बौद्ध धर्म की स्वीकारता उन्हें, भारतवर्ष में ही सीमित न करते हुये उन्हें बहुराष्ट्रीय मान्यता प्रदान करती है।

सारांश रूप में दलित समाज की मुक्ति अम्बेडकर के जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने दलितों को सतत् प्रगति के पथ पर बढ़ते रहने का संदेश दिया। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे बहुत सी चीजें चाहते थे जिनमें कुछ ऐसी थी जिन्हें धर्म के अलावा राज्य या अन्य किसी संगठन के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता था। अस्तु उन्होंने धर्म सम्मत सामाजिक विचारों का आरोपण किया। डा. अम्बेडकर समग्र रूप से सम्पूर्ण मानवता के प्रबल समर्थक बनकर अवतरित हुये थे। भारत की एकता एवं अखण्डता को अक्षुष्ण रखने के लिये जीवन भर कार्य करते रहे ताकि भारत में अशोक के स्वर्णिम काल की पुनर्स्थापना कर सकें।

कबीर और डा. अम्बेडकर दोनों में कई समानताएं हैं। बड़ी समानता यह है कि दोनों ने तथ्यों के साथ ब्राह्मणवाद का पुरजोर विरोध किया और वंचितों के लिए विकास के नये मार्ग प्रशस्त किये। दोनों ने अपने–अपने जीवन में लगभग एक समान चुनौतियों का सामना किया।

डा. अम्बेडकर ने अपने तीन गुरु माने थे, जिनमें कबीर साहेब उनके पहले गुरु हैं। स्पष्ट है कि कबीर ने उनको गहराई से प्रभावित किया था। अब यह बड़ा सवाल है कि वह किस आधार पर कबीर से प्रभावित हुए थे? या यह कि कबीर ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण में क्या भूमिका निभाई थी? जैसा कि कहा जाता है कि उनका परिवार कबीरपंथी था, इसलिए इसमें संदेह नहीं कि कबीर की वाणी से उनका पहला परिचय उनके घर में ही हो गया था। पर यह कहना मुश्किल है कि यह परिचय एक दार्शनिक कबीर से था या भक्त कबीर से, या दोनों से? यह कहना भी मुश्किल है कि उनके समय में मराठी में कबीर वाणी उपलब्ध थी या नहीं? जबकि हिन्दी में कबीर ग्रंथावली का पहला प्रकाशन बाबू श्यामसुंदर दास के संपादन में 1930 में हुआ था। लेकिन ज्यादा सम्भावना है कि 1915 में लंदन मैकमिलन से प्रकाशित किताब ''हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर'' ने, जिसमें रबीन्द्रनाथ टैगोर ने कबीर की सौ कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया था, बाबासाहेब के समक्ष एक दार्शनिक और तर्क करने वाले कबीर को प्रस्तुत किया था। इस किताब के प्रकाशन के

समय बाबासाहेब अमेरिका में थे, और 1916 में लंदन में राजनीतिक विज्ञान के छात्र थे। वह नई किताबों के खोजी और गजब के पढ़ाकू थे। अतः कहना न होगा कि कबीर की कविताओं के इस संग्रह ने उन पर व्यापक प्रभाव डाला था।

लेकिन कबीर साहेब से प्रभावित होने का यही एक कारण नहीं है, बकि सबसे बड़ा और प्रमुख कारण यह था कि कबीर और उनके समय की राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ समान थीं, और कबीर के व्यक्तित्व ने उनके नेतृत्व को नयी धार दी थी। इसे थोड़ा समझना होगा। बाबासाहेब और कबीर के बीच, यद्यपि पांच सदियों का अंतराल है, परन्तु अगर इतिहास का कोई भी विद्यार्थी 15वीं और 20 वीं सदी के समय का तुलनात्मक अध्ययन करेगा, तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि पाँच सौ साल के बाद इतिहास ने अपने का दुहराया है।

इसे समझने के लिए हमें कबीर के समय जो जानना होगा। कबीर 15वीं सदी के कवि और विचारक हैं। जो निम्नवर्गीय जुलाहा जाति से थे, जो उस समय की अछूत जाति थी। कबीर के समय में मुस्लिम सल्तनत कायम हो चुकी थी। इस्लाम ने शूद्र–अतिशूद्रों के लिए बंद दरवाजे खोल दिए थे। उनके मदरसों में दलितों के लिए कोई पाबंदी नहीं थी। दूसरी ओर सूफियों के मुहब्बत और बराबरी के व्यवहार से प्रभावित होकर पीड़ित जातियाँ इस्लाम में दीक्षित हो रही थीं। किन्तु, दूसरी ओर इस्लाम से हिन्दू धर्म को बचाने के लिए ब्राह्मणों की प्रतिक्रांति की भी तीव्र धारा चल रही थी। इस्लाम की प्रतिक्रांति में, 11वीं सदी में आदि शंकराचार्य ने जो अद्वैतवाद का दर्शन खड़ा किया था। उसने 14वीं–15वीं सदी में एक विशाल वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय का नया अवतार धारण कर लिया था। इसके संस्थापक रामानुज थे। इन्हीं के एक शिष्य रामानंद, दलित जातियों को वैष्णव बनाने के लिए दक्षिण से आकर उत्तर भारत में काशी में बस गए थे। उन्होंने इस्लाम में दलित जातियों के धर्मान्तरण को रोकने के लिए दलित जातियों, विशेष रूप से चांडालों को रामराम का मंत्र देकर वैष्णव बनाया। उनकी यह प्रक्रिया भी अजीब थी। वह इतने फासले से कि शरीर स्पर्श न हो सके, कान में रामराम के दो अक्षर बोल देते थे, और वे तत्काल वैष्णव हो जाते थे। हालाँकि, स्वामी रामानंद यह जरूर कहते थे कि ''जातपात पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई'' किन्तु वैष्णव–सम्प्रदाय वर्णव्यवस्था में विश्वास करता था। इसलिए उनकी कथनी और करनी में सामंजस्य नहीं था। इसलिए शूद्र वैष्णवों के सामाजिक स्तर में कोई परिवर्तन नहीं आया था। उन्हें मंदिर के गर्भ गृह में भी जाने का अधिकार नहीं था। वे केवल दूर से ही अपने ठाकुर के दर्शन कर सकते थे। वैष्णव सम्प्रदाय में दलित वैष्णवों की क्या स्थिति थी, यह जानने के लिए दौसा चौरासी वैष्णवन की वार्ता को पढ़ना आवश्यक है, जिसमें उन्हें ब्राह्मणों की जूठन खाने से मुक्ति मिलने की बात कही गयी है। यही स्थिति उस निम्न सामाजिक वर्ग की भी थी, जो शाक्त सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे। कबीर ने ऐसे शाक्तों और वैष्णवों के प्रति हमदर्दी व्यक्त करते हुए कहा था –

साश्वत ब्राह्मण न मिलो, बैष्णों मिलो चंडाल।
अंक माल दे भेटिए, मानो मिले गोपाल।।

अर्थात, शाक्त और ब्राह्मण से मत मिलो, पर अगर चंडाल वैष्णव मिल जाये, तो उससे ऐसे गले मिलो, मानो गोपाल मिल गए हों। इसमें व्यंग्य भी है और संदेश भी कि वह भटके हुए अपने ही भाई से प्रेम करना है।

कबीर के समय में सत्ता के दो केन्द्र थे–एक मुल्ला और दूसरा पंडित। संयोग से सत्ता के यही दो केद्र डा. अम्बेडकर के समय में भी थे। मुल्ला और पंडित दोनों ही अपने–अपने समुदाय के निर्विवाद धर्मगुरु थे, और न उनकी मारी हलाल थी। उनके विरुद्ध बोलने या उनसे सवाल करने का किसी जनता में साहस नहीं था। कबीर देख रहे थे कि पंडित और मुल्ला किसी तरह धर्म के नाम पर वर्णव्यवस्था, अस्पृश्यता, हज, पूजा, नमाज, तीर्थ, परलोक और आवागमन का पाखण्ड लोगों मे भर रहे थे, और इसकी आड़ में सामंत, साहूकार और व्यापारी उनका आर्थिक शोषण करके उनकी जीवन नर्क बनाये हुए थे। कबीर उनकी कथनी और करनी में अंतर देख रहे थे। कार्ल मार्क्स का मत है कि ''सत्ताधारी वर्ग के विचार हर युग में सत्ताधारी विचार हुआ करते हैं। यानी, जो वर्ग समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति होता है, वहीं उसकी सत्ताधारी बौद्धिक शक्ति भी होता है।'' कबीर साफ–साफ देख रहे थे कि मुल्ला–पंडित समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति के साथ–साथ जनता की बौद्धिक शक्ति भी थे। इसलिए कबीर ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि जनता के बौद्धिक नेतृत्व के लिए एक तीसरी बौद्धिक धारा को प्रवाहित करना होगा। वह तीसरी धारा आँखों देखी थी। कबीर ने दोनों से संवाद किया, पर उनका संवाद न मुल्ला को पसंद आया था और न पंडित को। इसलिए, कबीर ने 'न हिन्दू न मुसलमान' के सिद्धान्त को अपनाया और मुल्ला–पंडित को नकारते हुए जनता का क्रान्तिकारी नेतृतव किया। कबीर ने वेद–पुराण और कुरआन के विरुद्ध समाज को देखने और धर्म के मूल्यांकन का अपना अलग ही सौंदर्यशास्त्र विकसित किया। उन्होंने कहा–

''अलाह राम का गम नहीं,
तहं घर किया कबीर।'

इस पद में राम वैष्णवों के आराध्य देव राजा राम हैं, जो विष्णु के अवतार हैं। इसलिए कबीर ने उनको नहीं माना। उनकी निगाह में अलाह और राम दोनों सगुण हैं, जबकि उन्होंने निर्गुण का आविष्कार किया था, जो वर्णव्यवस्था और परलोक के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी खोज थी। उन्होंने कहा था–

''हमरा झगरा रहा न कोऊ,
पंडित मुल्ला छोड़े दोऊ'।

पंडित–मुल्ला दोनों को छोड़ कर ही कोई क्रान्ति की जा सकती है, कबीर के इस आत्मचिंतन ने डा. अम्बेडकर को प्रभावित किया था। बीसवीं सदी में डा. अम्बेडकर भी उन्हीं परिस्थितियों से जूझ रहे थे। जिनसे कबीर जूझ रहे थे। इसलिए, कबीर के आँखों देखे चिंतन ने अम्बेडकर को वह दृष्टि दी, जिसकी उन्हें तलाश थी। आलोचना की यह तीसरी धारा ही बहुजन वैचारिकी का मूल आधार बनी, जिसके प्रवर्तक यकीनन कबीर साबेह थे,

पर जिसे निस्संदेह बाबासाहेब डा. अम्बेडकर ने अपने नेतृत्व का प्रस्थान बिंदु बनाकर आगे बढ़ाया था।

कबीर ने ब्राह्मण के नेतृत्व को स्वीकार नहीं किया था, जो उनके समय में पूरे जगत का गुरु बना हुआ था। (ब्राह्मण गुरु जगत का साधू का गुरु नाहीं, उरझि–पुरझि कर मरि रह्या, चारिउं वेदा माहीं, वही, पृ. 28) यह उस दौर की सबसे बड़ी क्रान्ति थी। कबीर के इसी विचार ने डा. अम्बेडकर करे गहराई से छुआ था। रामानंद कबीर के समय में नहीं थे, पर उनकी विचारधारा थी, और उसका एक ऐ एक तुर्रम मठ विकसित हो चुका था। किन्तु, कबीर ने किसी से डरे बिना उन मठों पर प्रहार किया और एक भी सगुण मठ दलित वर्गों में स्थापित नहीं होने दिया। यह बड़ी क्रान्ति थी, जिससे बाबासाहेब प्रभावित हुए थे। 20वीं सदी में डा. अम्बेडकर ने कबीर के ही रास्ते पर चलते हुए, 'न–हिन्दू–न मुसलमान' का सिद्धान्त अपनाया था, और गाँधी सहित किसी भी नेता के नेतृत्व को स्वीकार ने करते हुए हिन्दू–मुस्लिम दोनों मठों पर बराबर प्रहार किया था। इसलिए वे कबीर की भांति ही हिन्दू और मुसलमान दोनों नेतृत्वों से दलित वर्गों को सचेत करने में सफल हुए थे।

डा. अम्बेडकर की धर्म की जो खोज बौद्धधर्म पर खत्म हुए थी, वहाँ तक वे कबीर के द्वारा ही पहुँचे थे। उन्हें बुद्ध तक ले जाने वाली जो चीज थी, वह कबीर की तर्क शक्ति थी। जो उनहें किसी हिन्दू संत में दिखाई नहीं दी थी। उनका निर्गुणवाद ही उनको अनीश्वरवाद तक ले गया था। यह कथन किसी को अविश्वसनीय लग सकता है। पर यह एक यथार्थ है। कबीर का निर्गुणवाद बाहर से भले ही ईश्वरवादी लगता है, पर भीतर से अपनी अर्थवत्ता में वह निरीश्वरवाद ही है। वह अकेला ऐसा ईश्वरवाद है, जो स्वर्ग–नर्क, आवागमन, परलोक, मुक्ति, पुनर्जम्नवाद, अवतारवाद, पूजा, तीर्थ, व्रत–उपवास और शस्त्रवाद का खंडन करता है। कौन सा ऐसा ईश्वरवाद है, जो यह खंडन करता हो? कबीर का निर्गुणवाद आदमी को भाग्य और शास्त्रों में विश्वास करने की शिक्षा नहीं देता है, बल्कि वह कहता है –

कौन मरे कौन जनमे भाई।
सरग नरक कौन गति पाई
पंचतत अविगत थें उतपना, एकै किया निवासा
बिछुरे तत फिरि सहजि समाना, रेख रही नहीं आसा।
जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत कथा गियानी।
आदे गगना अंते गगना मधे गगना भाई।
कहे कबीर कर्म किस लागे, झूठी संक उपाई।

बाबा साहेब डा. अम्बेडकर को इस निर्गुणवाद ने बहुत प्रभावित किया था, यही विज्ञान उन्हें बुद्ध के दर्शन में मिला था। कलामों को दिए गए जिस उपदेश में बुद्ध न शास्त्रवाद औ व्यक्विाद का खंडन करते हुए अनूभूत ज्ञान पर जो दिया था। उसे बाबासाहेब ने कबीर के इस पद में देखा था–

मेरा तेरा मनुआ कैसे एक होई रे,
मैं कहता हों आँखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

इसमें 'कागद लेखी' में शास्त्रवाद और व्यक्तिवाद दोनों का खंडन है, और 'आँखिन देखी' में अनुभूत ज्ञान है। यह कबीर का वह पद है, जिसे बाबासाहेब ने अपने राजनीतिक नेतृत्व का आधार बनाया था और जिसके बल पर गाँधी और कांग्रेस को दलितों की सामाजिक–आर्थिक हालात का आईना दिखाया था।

बाबा साहेब ने 'इनिहिलेशन ऑफ कास्ट'' (जाति का विनाश) भाषण में शुरू से अंत तक कबीर मौजूद हैं। उसमें जिस तार्किक ढंग से वर्णव्यवस्था और जातिवाद का खंडन मिलता हे, उसे अगर कबीर के तर्कों को सामने रखकर पढ़ा जायेगा तो लगेगा कि पांच सौ साल के बाद कबीर ही नए अवतार में बोल रहे हैं।

कबीर का तर्क था कि जब ईश्वर का कोई वर्ण नहीं, तो वह मनुष्यों का वर्ण कैसे बना सकता है? कबीर ने बड़ी वैज्ञानिक बात कही थी–

''नाति सरूप वर्ण नहीं जाकै, घटि–घटि रह्यौ समाई।''

जो बात बुद्ध ने कही थी, वही बात कबीर ने भी कही–

''एक बूंद एक मल मूतर, एक चाम इक गूदा
एक जो से सब उत्पन्ना, को ब्राह्मण को सूदा।''

जब डा. अम्बेडकर यह कहते हैं कि भारत में कोई भी जाति शुद्ध नहीं है, राजपूत और मराठा जैसी योद्धज्ञ जातियों में ही नहीं बल्कि ब्राह्मणों में भी विदेशी रक्त का मिश्रण है, तो कौन ब्राह्मण कौन शूद्र है? अथवा जब वे यह कहते हैं कि अछूत और ब्राह्मण एक ही प्रजाति के हैं, तो क्या वे कबीर के ही तर्क को आगे नहीं बढ़ाते हैं? यहीं नहीं, जब डा. अम्बेडकर धर्मशास्त्रों को डायनामइट से उड़ाने की बात करते हैं, तो क्या उनके जहन में कबीर नहीं थे, जो ब्राह्मण से कह रहे थे –

''बेद–कितेब छाड़ि देऊ पांडे, ई सब मन के भरमा''

जब डा. अम्बेडकर ब्राह्मण संतों की आलोचना करते हैं कि उन्होंने मनुष्य और ईश्वर के बीच समानता की बात तो की पर सामाजिक समानता कायम करने के लिए जाति के खिलाफ कभी आवाज नहीं उठाई, तो इसके पीछे भी कबीर की वह चेतना ही थी, जिसमें उन्होंने भक्ति का खण्डन किया था और कहा था कि जिसने जाति वर्ण को नहीं खोया, वह क्या भक्ति करेगा? यथा–

जब लंग नाता जाति का, तब लंग भक्ति न होए,
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति बरण कुल खोये।
जहां भक्ति वहाँ भेष नहीं, वर्णाश्रम हूँ नाहिं।
नाम भक्ति जो प्रेम सों, सौ दुर्लभ जग माहिं।

कबीर ने उस अध्यात्मवाद का समर्थन नहीं किया, जो लोक को मिथ्या और परलोक को सत्य बताता है। ब्राह्मणवादी अध्यात्म में द्वैतवाद और अद्वैतवाद ये दो दर्शन हैं। द्वैतवाद में जीवन और ब्रह्म अलग–अलग हैं, जबकि अद्वैतवाद में जीव और ब्रह्म एक ही हैं। पर दोनों ही परलोक में विश्वास करते हैं। कबीर का अध्यात्मवाद क्या था? और डा. अम्बेडकर उससे कितना प्रभावित थे, यह देखना भी दिलचस्प होगा।

डा. अम्बेडकर भी अध्यात्म या दर्शन को सामाजिक न्याय की कसौटी पर परखते थे। इस कसौटी में तीन बिन्दु थे– समानता, स्वतंत्रता और बन्धुता। इस कसौटी से उन्होंने सभी धर्मों का अध्ययन किया था, विशेष रूप से हिन्दूधर्म का। सामाजिक न्याय के ये तीनों बिंदु उन्हें हिन्दूधर्म के साथ–साथ इस्लाम और ईसाईयत में भी नहीं मिले थे। इस सम्बन्ध में उनकी कृति 'फिलोसोफी ऑफ हिन्दूइज्म'' को देखा जा सकता है। सामाजिक न्याय के ये तीनों बिंदु उन्हें कबीर से मिले थे। कबीर के यहाँ प्रेम पर जोर है, जिसके बिना समानता, स्वतंत्रता और बन्धुता का भाव आ ही नहीं सकता। यह कबीर ही थे, जिन्होंने चिल्लाकर कहा था कि खजूर के पेड़ की तहर खड़ा होने से क्या लाभ, जिसके नीचे पंथी को छाया तक नहीं मिलती, और फल भी बहुत दूर होता है। यह कबीर ने ही कहा था कि ''प्रेमी को प्रेमती मिले, तब सब विषय अमृत होई।' प्रेम का विकास ही आदमी के अंदर का सारा जहर अमृत में बदल सकता है, और तब लोग सिर्फ मृतकों के लिए ही नहीं रोयें, बल्कि गुलामों के लिए भी दुःखी होना पड़ेगा औश्र आंसु बहाना पड़ेगा –

''मुओं को क्या रोइए, जो अपने घर जाए।
रोइए बंदीवान को, जो हाटे हाट बिकाए।।

लेकिन ऐसे लोगों के प्रति कबीर तनिक भी उदार नहीं थे, बल्कि उनके कठोर निंदक थे, जो ब्रह्म और आत्मवाद पर गर्व तो करते थे, पर उनके मन में शूद्र और म्लेच्छ ही बसते थे, आदमी नहीं। (बहुत गरब गरबे सन्यासी, ब्रह्मचरित नहीं पासी; सूद्र मलेछ बसे मन माहीं, आतमराम सु चीन्हा नाहीं।) कबीर के ये लोकप्रिय शब्द हैं, जो शूद्र वर्गों में प्रचलित हैं। कबीर ने भारत की बहुसंख्यक आबादी को बदला था। आज दलित वर्गों में जो अधिसंख्य लोगों के नामों के आगे–पीछे जो 'राम' शब्द मिलता है, यह उन पर कबीर और रैदास के ही प्रभाव से ही है। यह प्रभाव इतना व्यापक था कि बाबा साहेब के पिता के नाम में भी 'राम' जुड़ा था। कबीर के इस निर्गुण राम ने दलितों को हिन्दू मंदिरों के सगुण देवताओं के प्रति जबरदस्त बिकर्षण पैदा किया था। पर क्या पता था कि सोलहवीं सदी में गोस्वामी तुलसीदास के ठाकुर जी का गुणगान, कबीर के निर्गुण राम को सगुण राम में बदल कर तीव्र प्रतिक्रांति करेगा और पुरोहितवाद के समर्थक उसके विस्तार में ही अपना समस्त प्रश्रय देगें।

अध्ययन का उद्देश्य

कबीरदास जी संत परम्परा के शिरोमणि एवं एक प्रकार चिंतक रहे हैं। इनकी वैचारिकी की पटल पर अनेकानेक चिंतकों एवं विचारकों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों के विरोध में अपनी–अपनी आवाज उठाई एवं एक नवीनीकरण के साथ समाज को एक नवीन दिशा और दशा प्रदान करने का कार्य भी किया, जिनमें आधुनिक युग के समाजवेत्ता एवं विधिवेत्ता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने तत्कालीन समाज एवं धर्म में व्याप्त कुरीतियों पर कुठारघात करने के साथ ही समाज को एक सूत्र में बांधने का कार्य किया और कबीर की चिन्तनशैलीको स्वीकारते हुए वचनों से मार्ग प्राप्त करते हुये समाज को जिजीविका प्रदान करने का कार्य किया। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य समाज में व्याप्त वैमनस्यता, रूढ़िवादिता, एवं आडम्बरों को संत कबीर एवं डॉ. अम्बेडकर की विचारिकी के माध्यम समाप्त कर, समाज को एक नवीनीकरण प्रदान करने के साथ ही समाज एवं धर्म में सौहार्दता एवं उन्नति की ओर अग्रसर करते हुए बसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को जनसामान्य में उत्पन्न करना है।

निष्कर्ष

डा. अम्बेडकर अपनी रचनाओं में कबीर को कहीं भी उद्धत नहीं किया है, साक्ष्यों एवं प्रमाणों की माने तो डॉ. अम्बेडकर का पारिवारिक परिवेश कबीरपंथी परम्परा से ही प्रारम्भ हुआ और नित्य–प्रतिदिन बाल्यकाल से ही कबीर–वाणी को सुनकर ही प्रौढ़ हुये। पिता राम जी अम्बेडकर कबीर–पंथी थे और बाबासाहेब अम्बेडकर की दूसरी पत्नी डॉ. शारदा कबीर थी जो कबीर–पंथी ब्राह्मण परिवार से थी। अतः कबीर की समाज के प्रति समरसता का जो भाव हमें उनकी वाणी (दोहों) से परिलक्षित होती है, वहीं भाव डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन में भी दिखाई देता है। सामाजिक वैमनस्यता किसी भी समाज के लिये हितकर नहीं हो सकता, इसे एक रूढ़ि विशेष मानना एवं इसका तिरस्कार करना कबीर चिन्तन की प्रमुखता है, वहीं डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का समाज के सभी वर्गों को समानता दिलाने के लिये किये गये प्रयासों में बौद्ध धर्म को स्वीकार करना भी इस सामाजिक कुरीति का तिरस्कार एवं सामाजिक समरसता के लिये सौहार्दपूर्ण एवं एक समाज–दार्शनिक कार्य भी है, जिसकी उपादेयता वर्तमान–संदर्भ में समाज के प्रत्येक वर्ग के कल्याणार्थ हेतु समझने की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

संदर्भ

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी; कबीर के व्यक्तित्व, साहित्य और दार्शनिक विचारों की आलोचना; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 2002।

एस. के. पंजम; कबीर अमृत वाणी (सद्गुरु कबीर साहिल की साखियां); दिव्यांश पब्लिकेशन, लखनऊ; 2015।

डॉ. मीना पुरवार; सामाजिक परिवर्तन के युग पुरुष; आशा प्रकाशन, कानपुर; 2010।

डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल; डॉ. आम्बेडकर और समाज व्यवस्था; किताबघर; नई दिल्ली; 1996।

देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी; भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी; दलित साहित्य प्रकाशन संस्था; 2004।

मोहन सिंह; डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व के कुछ पहलु; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद; 1998।

डॉ. राकेश कुमार बब्बर; कबीर वाणी में काव्य रूढ़ियाँ; कल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली; 2011।

डा. प्रेमशंकर त्रिपाठी; कबीर अनुशीलन; श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, कलकत्ता; 2000।

श्याम सुन्दर दास; कबीर ग्रन्थावली; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; 2016।

प्रो. युगेश्वर; कबीर समग्र, खण्ड–1; हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी; 1995।